बौद्धचर्या-विधि

लेखक

भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक

महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५००

द्वितीय संस्करण १९५६

प्रकाशक–मंत्री, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी

मुद्रक–ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ५०६२(क)–१३

आमुख

भारत में बौद्धों की संख्या नित्य-प्रति बड़े वेग से बढ़ती जा रही है। नवागत बौद्धों एवं परम्परागत बौद्धों—सबकी यह माँग थी कि उनके लिए उपयोगी बौद्धचर्या-विधि हिन्दी में लिखी जाय, जिससे वे अपने दैनिक एवं जीवन सम्बन्धी धार्मिक कार्यों का सम्पादन कर सकें। इधर लगभग एक सप्ताह से भाई धर्मरत्न जी ने बार-बार आग्रह करके ऐसा विवश कर दिया कि इसे शीघ्र लिखना पड़ा।

इस पुस्तक में बौद्धों की प्रायः सभी चर्या-पद्धतियाँ संक्षेप में दी गई हैं और यह ध्यान रखा गया है कि साधारणजन इससे पर्याप्त लाभ उठा सकें। आशा है, बौद्ध उपासक-उपासिकाओं के लिए यह पुस्तक परम उपयोगी सिद्ध होगी। इस कृति के लिए सब पाठकों को भाई धर्मरत्न एम० ए० का कृतज्ञ होना चाहिए।

सारनाथ, बनारस —भिक्षु धर्मरक्षित

१०-८-५५

विषय सूची

अप्पमादेन सम्पादेथ

बौद्धचर्या-विधि

वन्दना परिच्छेद

त्रिरत्न-वन्दना

प्रत्येक बौद्ध का कर्तव्य है कि वह प्रातः एवं संध्या समय त्रिरत्न-वन्दना करे। त्रिरत्न कहते हैं बुद्ध, धर्म, संघ को। इनकी वन्दना करने से चित्त शान्त रहता है। मानसिक संतोष प्राप्त होता है और त्रिरत्न के गुणानुस्मरण से पुण्य लाभ होता है। त्रिरत्न-वन्दना का क्रम इस प्रकार है:—

१. बुद्ध-वन्दना

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

(इसे तीन बार कहते हैं। इसका अर्थ है—"उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है।")

इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा'ति ।

अर्थ—वह भगवान् पूर्व-बुद्धों की तरह सबके पूज्य, सम्यक् सम्बुद्ध, सभी सद्-विद्याओं एवं सदाचरणों से युक्त, सुन्दर गति प्राप्त, लोक-लोकान्तर के रहस्य को जानने वाले, संसार के मनुष्यों को राग, द्वेष और मोह से छुड़ाने के लिए अनुपम सारथी के समान, देवता और मनुष्यों के उपदेश (=शिक्षक) स्वयं बोधस्वरूप और दूसरों को बोध कराने वाले, सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यों से युक्त और सभी क्लेशों से मुक्त हैं ।

बुद्धं जीवितपरियन्तं सरणं गच्छामि ॥१॥
ये च बुद्धा अतीता च ये च बुद्धा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये बुद्धा अहं वन्दामि सब्बदा ॥२॥
नत्थि मे सरणं अञ्ञं बुद्धो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्चवज्जेन होतु मे जयमङ्गलं ॥३॥
उत्तमङ्गेन वन्देहं पादपंसु वरुत्तमं ।
बुद्धे यो खलितो दोसो बुद्धो खमतु तं ममं ॥४॥

अर्थ—मैं जीवन-पर्यन्त बुद्ध की शरण जाता हूँ ॥१॥ भूतकाल में जितने बुद्ध हुए हैं और भविष्यत् काल में जितने बुद्ध होंगे तथा वर्तमान् काल में जितने बुद्ध हैं—मैं उन सब की सदा वन्दना करता हूँ ॥२॥ मेरी दूसरी कोई शरण नहीं है, केवल बुद्ध ही मेरी शरण हैं, इस सत्य-वचन से मेरा जयमंगल (=कल्याण) हो ॥३॥ मैं उन भगवान् बुद्ध की उत्तम चरण-धूलि की सिर से वन्दना करता हूँ। यदि अज्ञानवश बुद्ध के प्रति मुझसे कोई दोष हुआ हो तो बुद्ध उसको क्षमा करें ॥४॥

२. धर्म-वन्दना

स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'ति ।

अर्थ—भगवान् का धर्म सुन्दर रूप से कहा गया है, वह तत्काल फलदायक है, कालान्तर में नहीं, वह यहीं दिखाई देने वाला है, 'आओ और इसे देख लो' कहलाने योग्य है, निर्वाण तक पहुँचाने वाला और विद्वान् पुरुषों के स्वयं जानने योग्य है ।

धम्मं जीवितपरियन्तं सरणं गच्छामि ॥ १ ॥

ये च धम्मा अतीता च ये च धम्मा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये धम्मा अहं वन्दामि सब्बदा ॥ २ ॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं धम्मो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्चवज्जेन होतु मे जयमङ्गलं ॥ ३ ॥

उत्तमङ्गेन वन्देहं धम्मञ्च दुविधं वरं ।
धम्मे यो खलितो दोसो धम्मो खमतु तं ममं ॥ ४ ॥

अर्थ—मैं जीवन-पर्यन्त धर्म की शरण जाता हूँ ॥ १ ॥ जो भूतकाल के बुद्धों द्वारा उपदिष्ट धर्म हैं और जो भविष्यत् काल के बुद्धों द्वारा उपदिष्ट धर्म होंगे तथा वर्तमान् काल में बुद्ध द्वारा उपदिष्ट जो धर्म है—मैं उन सबकी सदा वन्दना करता हूँ ॥२॥ मेरी दूसरी कोई शरण नहीं है, केवल धर्म ही मेरी उत्तम शरण है, इस सत्य-वचन से मेरा जयमंगल (= कल्याण) हो ॥३॥ मैं व्यवहारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के श्रेष्ठ धर्म की सिर से वन्दना करता हूँ, यदि अज्ञानवश धर्म के प्रति मुझसे कोई दोष हुआ हो तो धर्म उसको क्षमा करे ॥४॥

३. संघ-वन्दना

सुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, उजुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, सामीचिपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठपुरिसपुग्गला—एस भगवतो सावकसंघो, आहुनेय्यो, पाहुनेय्यो, दक्खिनेय्यो, अञ्जलिकरणीयो, अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा'ति।

अर्थ—भगवान् का श्रावक-संघ सुमार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक-संघ सीधे मार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक-संघ न्याय-मार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक-संघ उचित मार्ग पर चल रहा है, जो कि यह चार युगल[1] और आठ पुरुष=पुद्गल हैं[2]—यही भगवान् का श्रावक-संघ है, वह आह्वान करने के योग्य है, पाहुन बनाने के योग्य है, दान देने के योग्य है, हाथ जोड़ने के योग्य है और लोक के लिए सर्वोत्तम पुण्य-क्षेत्र है।

---

१. भगवान् बुद्ध का श्रावक-संघ चार युग्मों (=जोड़ों) में विभक्त है—(१) स्रोतापत्ति मार्ग और स्रोतापत्ति फल को प्राप्त, (२) सकृदागामी मार्ग और सकृदागामी फल को प्राप्त, (३) अनागामी मार्ग और अनागामी फल को प्राप्त, (४) अर्हत् मार्ग और अर्हत् फल को प्राप्त।

२. भगवान् बुद्ध के श्रावक-संघ के आठ पुरुष ये हैं—(१) स्रोतापत्ति-मार्ग-प्राप्त, (२) स्रोतापत्ति-फल-प्राप्त, (३) सकृदागामी-मार्ग-प्राप्त, (४) सकृदागामी-फल-प्राप्त, (५) अनागामी-मार्ग-प्राप्त, (६) अनागामी-फल-प्राप्त, (७) अर्हत्-मार्ग-प्राप्त, (८) अर्हत्-फल-प्राप्त।

संघं जीवितपरियन्तं सरणं गच्छामि ॥१॥

ये च संघा अतीता च ये च संघा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये संघा अहं वन्दामि सब्बदा ॥२॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं संघो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्चवज्जेन होतु मे जयमङ्गलं ॥३॥

उत्तमङ्गेन वन्देहं संघञ्च तिविधुत्तमं ।
संघे यो खलितो दोसो संघो खमतु तं ममं ॥४॥

अर्थ—मैं जीवन-पर्यन्त संघ की शरण जाता हूँ ॥१॥ जो भूतकाल के बुद्ध-शिष्य-संघ हैं और जो भविष्यत् काल में बुद्ध-शिष्य-संघ होंगे तथा जो वर्तमान काल में बुद्ध-शिष्य-संघ हैं—मैं उन सबकी सदा वन्दना करता हूँ ॥२॥ मेरी दूसरी कोई शरण नहीं है, केवल संघ ही मेरी उत्तम शरण है, इस सत्य-वचन से मेरा जयमंगल (=कल्याण) हो ॥३॥ जो पाप से रहित, मन, वाणी और काया—इन तीनों प्रकार से उत्तम और पवित्र संघ है, मैं उसकी सिर से वन्दना करता हूँ, यदि अज्ञानवश संघ के प्रति मुझसे कोई दोप हुआ हो तो संघ उसको क्षमा करे ॥४॥

४. चैत्य-वन्दना

वन्दामि चेतियं सब्बं सब्बठानेसु पतिट्ठितं
सारीरिक-धातु महाबोधिं बुद्धरूपं सकलं सदा ॥

अर्थ—सब स्थानों में प्रतिष्ठित शारीरिक-धातु (=अस्थि), बोधि-वृक्ष और बुद्ध-प्रतिमा—इन सब चैत्यों की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

५. बोधि-वन्दना

यस्स मूले निसिन्नोव सब्बारि विजयं अका ।
पत्तो सब्बञ्ञुतं सत्था वन्दे तं बोधिपादपं ॥१॥
इमे हेते महाबोधि लोकनाथेन पूजिता ।
अहम्पि ते नमस्सामि बोधिराजा नत्थु ते ॥२॥

अर्थ—भगवान् बुद्ध ने जिस बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए ही (राग, द्वेष, मोह और मार की सेना आदि) सब शत्रुओं पर विजय पाई तथा सर्वज्ञता-ज्ञान प्राप्त किया, उस बोधि-वृक्ष को नमस्कार है ।

ये महाबोधि वृक्ष लोकनाथ भगवान् बुद्ध द्वारा पूजित हैं, मैं भी उन्हें नमस्कार करता हूँ—'हे बोधिराजा ! तुम्हें मेरा नमस्कार है' ॥२॥

६. बुद्ध-पूजा

भगवान् के समय में बौद्धगृहस्थ माला, पुष्प, धूप आदि तथागत को देकर उनका सम्मान करते थे, इसीलिए उनकी कुटी के पास सुगन्धियों का ढेर लग जाता था। सदा सुगन्धियों से सुवासित होने के कारण ही बुद्ध-कुटी को गन्ध-कुटी कहा जाता था ।

सम्प्रति भी बुद्धमूर्ति की पूजा पुष्प, धूप, दीप, आहार आदि से करते हैं । पूजा करने के ये मंत्र हैं:—

पुष्प-पूजा

वण्णगन्ध-गुणोपेतं एतं कुसुम-सन्तर्ति ।
पूजयामि मुनिन्दस्स, सिरीपाद-सरोरुहे ॥

अर्थ—मैं वर्ण, गन्ध और सुन्दर गुण से युक्त इस पुष्प से भगवान् बुद्ध के कमलवत् श्रीचरणों में पूजा करता हूँ।

धूप-पूजा

गन्धसम्भार-युत्तेन धूपेनाहं सुगन्धिना।
पूजये पूजनेय्यन्तं, पूजाभाजन-मुत्तमं ॥

अर्थ—गन्ध से युक्त धूप की सुगन्धि से मैं उत्तम पूजा के योग्य पूजनीय बुद्ध की पूजा करता हूँ।

सुगन्धि-पूजा

सुगन्धिकाय-वदन-मनन्त-गुण-गन्धिना ।
सुगन्धिनाहं गन्धेन पूजयामि तथागतं ॥

अर्थ—मैं सुगन्धि-युक्त शरीर एवं मुख वाले, अनन्त गुण-सुगन्धि से पूर्ण तथागत की सुगन्धि की गन्ध से पूजा करता हूँ।

प्रदीप-पूजा

घनसारप्पदित्तेन दीपेन तमधंसिना ।
तिलोकदीपं सम्बुद्धं पूजयामि तमोनुदं ॥

अर्थ—अन्धकार को नष्ट करनेवाले तेल से जलते हुए प्रदीप से मैं तीनों लोकों के प्रदीप-तुल्य अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाले भगवान् बुद्ध की पूजा करता हूँ।

आहार-पूजा

अधिवासेतु नो भन्ते भोजनं परिकप्पितं।
अनुकम्पं उपादाय परिगण्हातु मुत्तमं॥

अर्थ—भन्ते! हमारे चढ़ाए हुए उत्तम भोजन को अनुकम्पा करके ग्रहण करें।

७. संकल्प

इमाय धम्मानुधम्म-पटिपत्तिया बुद्धं पूजेमि।
इमाय धम्मानुधम्म-पटिपत्तिया धम्मं पूजेमि।
इमाय धम्मानुधम्म-पटिपत्तिया संघं पूजेमि ॥१॥

अद्धा इमाय पटिपत्तिया जातिजरामरणम्हा परिमुच्चिस्सामि ॥२॥

इमिना पुञ्ञकम्मेन मा मे बालसमागमो।
सतं समागमो होतु याव निब्बानपत्तिया ॥३॥

देवो वस्सतु कालेन सस्ससम्पत्ति हेतु च।
फीतो भवतु लोको च राजा भवतु धम्मिको ॥४॥

अर्थ—इस धर्म की प्रतिपत्ति से मैं बुद्ध, धर्म, संघ की पूजा करता हूँ ॥१॥ निश्चय ही इस प्रतिपत्ति से जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से मुक्त हो जाऊँगा ॥२॥ इस पुण्य कर्म से निर्वाण प्राप्त करने के समय तक कभी भी मूर्खों से मेरी संगति न हो, सदा सत्पुरुषों की संगति हो ॥३॥ फसल की वृद्धि के लिए समय पर पानी बरसे, संसार के प्राणी उन्नति करें और शासक धार्मिक हो ॥४॥

शील परिच्छेद

शील का शाब्दिक अर्थ सदाचार है। पञ्चशील, अष्टशील और प्रव्रज्याशील इसके अनेक भेद हैं। बौद्ध गृहस्थों का कर्तव्य है कि वे नित्य पञ्चशील का पालन करें और अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा के दिन अष्टशील का पालन करें। प्रव्रज्या-शील भिक्षु-दीक्षा लेने वाले व्यक्तियों के लिए है।

पञ्चशील ग्रहण करने से पूर्व भगवान् को प्रणाम करके त्रिशरण ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति किसी अन्य धर्म को मानने वाला है और यदि वह बौद्ध धर्म ग्रहण करना चाहता है तो उसे किसी भिक्षु से त्रिशरण के साथ पञ्चशील ग्रहण करना चाहिए। त्रिशरण सहित पञ्च-शील ग्रहण कर लेने से वह बौद्ध हो जायेगा। त्रिशरण सहित पञ्चशील को ग्रहण करने की विधि इस प्रकार है:—

१. नमस्कार

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

(इसे तीन बार कहना चाहिए। इसका अर्थ है—उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है।)

२. त्रिशरण

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ।

अर्थ—

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

दुतियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, संघं सरणं गच्छामि ।

अर्थ—

दूसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
दूसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
दूसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

ततियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि, संघं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि ।

अर्थ—

तीसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
तीसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
तीसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

३. पंचशील

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

३. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

५. सुरा-मेरय-मज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

अर्थ—

१. मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

२. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

३. मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

४. मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

५. मैं सुरा (=पक्की शराब), मेरय (=कच्ची शराब), मद्य और नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

४. अष्टशील

अष्टशील को उपोशथ शील भी कहते हैं। हर महीने में अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या—ये चार तिथियाँ उपोशथ-व्रत रहने की हैं, इन्हीं दिनों में अष्टशील का पालन करते हैं।

अष्टशील ग्रहण करनेवाले व्यक्ति को किसी भिक्षु के पास जाकर पहले तीन बार नमस्कार करना चाहिये। उसके बाद विधिवत्

त्रिशरण ग्रहण करना चाहिए। तदुपरान्त इस प्रकार अष्टशील लेना चाहिए:—

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

३. अब्रह्मचरिया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

५. सुरामेरयमज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

६. विकाल-भोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

७. नच्च-गीत-वादित-विसूक-दस्सन-माला-गंध-विलेपन-धारण-मण्डन-विभूसनट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

८. उच्चासयन-महासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

अर्थ—

१. मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

२. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

३. मैं अब्रह्मचर्य से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

४. मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

५. मैं सुरा, मेरय, मद्य और नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

६. मैं विकाल-भोजन[1] से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

---

१. दिन में १२ बजे से लेकर दूसरे दिन अरुणोदय के पूर्व (५ बजे प्रातः) तक के समय को विकाल माना जाता है। उपोशथ-व्रतधारी गृहस्थ को विकाल में भोजन नहीं करना चाहिए।

७. मैं नाच, गाना, बाजा और मेले-तमाशे को देखने तथा माला और सुगन्धि लेपनादि को धारण करने एवं शरीर-शृङ्गार के लिए किसी प्रकार के आभूषण की वस्तुओं को धारण करने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

८. मैं बहुत ऊँची और महार्घ शय्या पर सोने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

परित्राण परिच्छेद

परित्राण का अर्थ है रक्षा। परित्राण-पाठ से व्यक्ति का कल्याण होता है। भूत-प्रेतों का उपद्रव शान्त हो जाता है, विषम रोग दूर हो जाते हैं और सदा देवताओं की आरक्षा बनी रहती है। इसीलिए रोगी होने पर गृहारम्भ आदि शुभ कर्मों में, विवाह-मंगल में, भोजन-दान देने के पश्चात् और अपने परिवार के कल्याण के लिए परित्राण पाठ कराया जाता है। बौद्ध गृहस्थों एवं भिक्षुओं का यह दृढ़ विश्वास है है कि परित्राण-पाठ से सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

परित्राण-पाठ भिक्षु करते हैं, किन्तु जहाँ भिक्षु न हों वहाँ योग्य गृहस्थों द्वारा परित्राण पाठ कराया जा सकता है। अपने कल्याण के लिए स्वयं पाठ करना भी लाभदायक होता है। हम यहाँ कतिपय प्रमुख परित्राण-पाठ के सुत्तों को दे रहे हैं[१]:—

१. आवाहन

समन्ता चक्कवालेसु अत्रागच्छन्तु देवता।
सद्धम्मं मुनिराजस्स सुणन्तु सग्गमोक्खदं॥

१. परित्राण-पाठ सुनने वाले को सामने बैठा कर (यदि वह रोगी है तो लेटा भी रह सकता है), एक तेहरे धागे को उसके हाथ में थम्हा दें और पाठ करने वाले भी उसे थाम्ह कर एक जलपूर्ण कलश में उस धागे के दूसरे सिरे को डाल दें तथा ऊपर से आम के पल्लव से ढँक दें। पाठ के उपरान्त उसके हाथ में धागे को बाँधें तथा थोड़ा जल पीने के लिए दें और शेष घर में छिड़क दें।

अर्थ—हे समस्त चक्रवालवासी देवगण ! आप लोग यहाँ आएँ और मुनिराज भगवान् बुद्ध के स्वर्ग तथा मोक्षदायक सद्धर्म को श्रवण करें।

धम्मसवणकालो अयं भदन्ता,
धम्मसवणकालो अयं भदन्ता,
धम्मसवणकालो अयं भदन्ता।

अर्थ—हे माननीय देवगण ! यह धर्म-श्रवण करने का समय है।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

अर्थ—उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है।

२. महामङ्गल सुत्त

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि :—

बहू देवा मनुस्सा च मङ्गलानि अचिन्तयुं।
आकङ्खमाना सोत्थानं ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं ॥१॥
असेवना च बालानं पण्डितानञ्च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं एतं मङ्गलमुत्तमं ॥२॥
पतिरूपदेसवासो च पुब्बे च कतपुञ्ञता।
अत्तसम्मापणिधि च एतं मङ्गलमुत्तमं ॥३॥

बाहुसच्चं च सिप्पञ्च विनयो च सुसिक्खितो ।
सुभासिता च या वाचा एतं मङ्गलमुत्तमं ॥४॥

माता-पितु उपट्ठानं पुत्तदारस्स सङ्गहो ।
अनाकुला च कम्मन्ता एतं मङ्गलमुत्तमं ॥५॥

दानञ्च धम्मचरिया च ञातकानं च सङ्गहो ।
अनवज्जानि कम्मानि एतं मङ्गलमुत्तमं ॥६॥

आरति विरति पापा मज्जपाना च सञ्ञमो ।
अप्पमादो च धम्मेसु एतं मङ्गलमुत्तमं ॥७॥

गारवो च निवातो च सन्तुट्ठी च कतञ्ञुता ।
कालेन धम्मसवणं एतं मङ्गलमुत्तमं ॥८॥

खन्ती च सोवचस्सता समणानञ्च दस्सनं ।
कालेन धम्मसाकच्छा एतं मङ्गलमुत्तमं ॥९॥

तपो च ब्रह्मचरियञ्च अरियसच्चान दस्सनं ।
निब्बानसच्छिकिरिया च एतं मङ्गलमुत्तमं ॥१०॥

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि चित्तं यस्स न कम्पति ।
असोकं विरजं खेमं एतं मङ्गलमुत्तमं ॥११॥

एतादिसानि कत्वान सब्बत्थमपराजिता ।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति तं तेसं मङ्गलमुत्तम'न्ति ॥१२॥

अर्थ—ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय एक देवता रात्रि बीतने पर अपनी दीप्ति से समस्त जेतवन को आलोकित कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो वह गाथा में भगवान् से बोला :—

कल्याण की आकांक्षा करते हुए बहुत देवताओं और मनुष्यों ने

मंगल के विषय में विचार किया है। आप बतावें कि उत्तम मंगल क्या है ॥१॥

[भगवान् ने कहा—] मूर्खों की संगति न करना, पंडितों की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना—यह उत्तम मंगल है ॥२॥

अनुकूल स्थानों में निवास करना, पूर्व जन्म के संचित पुण्य का होना और अपने को सन्मार्ग पर लगाना—यह उत्तम मंगल है ॥३॥

बहुश्रुत होना, शिल्प सीखना, शिष्ट होना, सुशिक्षित होना और सुभाषण करना—यह उत्तम मंगल है ॥४॥

माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री का पालन-पोषण करना और गड़बड़ का काम न करना—यह उत्तम मंगल है ॥५॥

दान देना, धर्माचरण करना, बन्धु-बान्धवों का आदर-सत्कार करना और निर्दोष कार्य करना—यह उत्तम मंगल है ॥६॥

मन, शरीर तथा वचन से पापों को त्यागना, मद्यपान न करना और धार्मिक कार्यों में तत्पर रहना—यह उत्तम मंगल है ॥७॥

गौरव करना, नम्र होना, सन्तुष्ट रहना, कृतज्ञ और उचित समय पर धर्म-श्रवण—यह उत्तम मंगल है ॥८॥

क्षमाशील होना, आज्ञाकारी होना, श्रमणों का दर्शन करना और उचित समय पर धार्मिक चर्चा करना—यह उत्तम मंगल है ॥९॥

तप, ब्रह्मचर्य का पालन, आर्यसत्यों का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार—यह उत्तम मंगल है ॥१०॥

जिसका चित्त लोकधर्म से विचलित नहीं होता, वह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय रहता है—यह उत्तम मंगल है ॥११॥

इस प्रकार के कार्य करके सर्वत्र अपराजित हो लोग कल्याण को प्राप्त करते हैं—यह उनके लिए (=देवताओं तथा मनुष्यों के लिए) उत्तम मंगल है ॥१२॥

३. करणीयमेत्त सुत्त

करणीयमत्थकुसलेन,
यन्तं सन्तं पदं अभिसमेच्च ।
सक्को उजू च सूजू च,
सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥१॥

सन्तुस्सको च सुभरो च,
अप्प किच्चो च सल्लहुकवुत्ति ।
सन्ति न्द्रियो च निपको च,
अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥ २ ॥

न च खुद्दं समाचरे किञ्चि,
येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं ।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु,
सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ३ ॥

ये केचि पाणभूतत्थि तसा वा,
थावरा वा अनवसेसा ।
दीघा वा ये महन्ता वा,
मज्झिमा रस्सका अणुकथूला ॥ ४ ॥

दिट्ठा वा ये वा अदिट्ठा,
ये च दूरे वसन्ति अविदूरे ।
भूता वा सम्भवेसी वा,
सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ५ ॥

न परो परं निकुब्बेथ,
नातिमञ्ञेथ कत्थचि न किञ्चि ।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा,

नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥६॥

माता यथा नियं पुत्तं,
आयुसा एकपुत्त मनुरक्खे ।
एवम्पि सब्ब-भूतेसु,
मानसं भावये अपरिमाणं ॥७॥

मेत्तञ्च सब्ब-लोकस्मिं,
मानसं भावये अपरिमाणं ।
उद्धं अधो च तिरियञ्च,
असम्बाधं अवेरं असपत्तं ॥८॥

तिट्ठं चरं निसिन्नो वा,
सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो ।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य,
ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥९॥

दिट्ठिञ्च अनुपगम्म,
सीलवा दस्सनेन सम्पन्नो ।
कामेसु विनेय्य गेधं,
न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति ॥१०॥

अर्थ—शान्ति पद की प्राप्ति चाहने वाले, कल्याण-साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह योग्य, ऋजु और अत्यन्त ऋजु बने । उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो ॥१॥ वह सन्तोषी हो, सहज ही पोष्य हो और सादा जीवन बिताने वाला हो । उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों । वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो ॥२॥ ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करे जिसके लिए दूसरे विज्ञ लोग उसे दोष दें । (और इस प्रकार मैत्री करे) सब प्राणी सुखी हों, क्षेमी हों और

सुखितात्मा हों ॥३॥ जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान् , मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या उत्पन्न होनेवाले जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुखपूर्वक रहें ॥४-५॥ एक दूसरे की वंचना न करे। कभी किसी का अपमान न करे। वैमनस्य या विरोध से एक दूसरे के दुःख की इच्छा न करे ॥६॥ माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम-भाव बढ़ावे ॥७॥ बिना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ावे ॥८॥ खड़े रहते, बैठते या सोते, जब तक जागृत रहे, तब तक इस प्रकार की स्मृति बनाये रहे। इसी को ब्रह्मविहार कहते हैं ॥९॥ ऐसा नर किसी मिथ्या दृष्टि में न पड़, शीलवान् हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो, काम-तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ॥१०॥

४. महामङ्गल गाथा

महाकारुणिको नाथो हिताय सब्बपाणिनं,
पूरेत्वा पारमी सब्बा पत्तो सम्बोधि-मुत्तमं ।
एतेन सच्चवज्जेन होतु ते जयमङ्गलं ॥१॥

जयन्तो बोधिया मूले सक्यानं नन्दिवड्ढनो ।
एवं तुय्हं जयो होतु जयस्सु जयमङ्गलं ॥२॥

सक्कत्वा बुद्धरतनं ओसधं उत्तमं वरं,
हितं देवमनुस्सानं बुद्धतेजेन सोत्थिना ।
नस्सन्तुपद्दवा सब्बे दुक्खा वूपसमेन्तु ते ॥३॥

सक्कत्वा धम्मरतनं ओसधं उत्तमं वरं,

परिलाहूपसमनं धम्मतेजेन सोत्थिना ।
नस्सन्तुपद्दवा सब्बे भया वूपसमेन्तु ते ॥४॥
सक्कत्वा संघरतनं ओसधं उत्तमं वरं,
आहुणेय्यं पाहुणेय्यं संघतेजेन सोत्थिना ।
नस्सन्तुपद्दवा सब्बे रोगा वूपसमेन्तु ते ॥५॥
यं किञ्चि रतनं लोके विज्जति विविधं पुथु,
रतनं बुद्धसमं नत्थि तस्मा सोत्थि भवन्तु ते ॥६॥
यं किञ्चि रतनं लोके विज्जति विविधं पुथु,
रतनं धम्मसमं नत्थि तस्मा सोत्थि भवन्तु ते ॥७॥
यं किञ्चि रतनं लोके विज्जति विविधं पुथु,
रतनं संघसमं नत्थि तस्मा सोत्थि भवन्तु ते ॥८॥
नत्थि मे सरणं अञ्ञं बुद्धो मे सरणं वरं,
एतेन सच्चवज्जेन होतु ते जयमङ्गलं ॥९॥
नत्थि मे सरणं अञ्ञं धम्मो मे सरणं वरं,
एतेन सच्चवज्जेन होतु ते जयमङ्गलं ॥१०॥
नत्थि मे सरणं अञ्ञं संघो मे सरणं वरं,
एतेन सच्चवज्जेन होतु ते जयमङ्गलं ॥११॥
सब्बीतियो विवज्जन्तु सब्बरोगो विनस्सतु,
मा ते भवत्वन्तरायो सुखी दीघायुको भव ॥१२॥
भवतु सब्बमङ्गलं रक्खन्तु सब्बदेवता,
सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥१३॥
भवतु सब्बमङ्गलं रक्खन्तु सब्बदेवता,
सब्बधम्मानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥१४॥
भवतु सब्बमङ्गलं रक्खन्तु सब्बदेवता,
सब्बसंघानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥१५॥

नक्खत्तयक्खभूतानं पापग्गहनिवारणा,
परित्तस्सानुभावेन हन्तु सब्बे उपद्दवे ॥१६॥

यं दुन्निमित्तं अवमङ्गलञ्च,
यो चामनापो सकुणस्स सद्दो।
पापग्गहो दुस्सुपिनं अकन्तं,
बुद्धानुभावेन विनासमेन्तु ॥१७॥

यं दुन्निमित्तं अवमङ्गलञ्च,
यो चापनापो सकुणस्स सद्दो।
पापग्गहो दुस्सुपिनं अकन्तं,
धम्मानुभावेन विनासमेन्तु ॥१८॥

यं दुन्निमित्तं अवमङ्गलञ्च,
वो चामनापो सकुणस्स सद्दो।
पापग्गहो दुस्सुपिनं अकन्तं,
संघानुभावेन विनासमेन्तु ॥१९॥

अर्थ—महाकारुणिक भगवान् बुद्ध ने सब प्राणियों की भलाई के लिए सब पारमिताओं को पूर्ण करके उत्तम सम्बोधि (= ज्ञान) को प्राप्त किया। इस सत्य-वचन से तेरा कल्याण हो ॥१॥ बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर जिस प्रकार शाक्यसिंह भगवान् बुद्ध ने विजय प्राप्त की, उसी प्रकार तेरी जय हो, तेरी जय और कल्याण हो ॥२॥ उत्तम एवं श्रेष्ठ औषधि बुद्धरत्न का सत्कार करके, जो देव और मनुष्यों के लिए हितकारी है, उस बुद्ध के प्रताप से कल्याणपूर्वक सभी उपद्रव नष्ट हो जायँ और तेरे सब दुःख शान्त हो जायँ ॥३॥ उत्तम एवं श्रेष्ठ औषधि धर्मरत्न का सत्कार करके, जो पीड़ा को शान्त करनेवाला है, उस धर्म के प्रताप से कल्याणपूर्वक सभी उपद्रव नष्ट हो जायँ और तेरे सब भय

शान्त हो जायँ ॥ ४ ॥ उत्तम एवं श्रेष्ठ औषधि संघरत्न का सत्कार करके जो आह्वान करने योग्य है, पाहुन बनाने योग्य है, उस संघ के प्रताप से कल्याणपूर्वक सभी उपद्रव नष्ट हो जायँ और तेरे सब रोग शान्त हो जायँ ॥ ५ ॥ संसार में विभिन्न प्रकार के जो कोई रत्न विद्यमान हैं, बुद्धरत्न के समान···धर्मरत्न के समान······संघरत्न के समान अन्य रत्न नहीं है, इसलिए तेरा कल्याण हो ॥ ६-८ ॥ मेरी दूसरी शरण नहीं है, बुद्ध, धर्म, संघ ही मेरी उत्तम शरण है—इस सत्यवचन से तेरा कल्याण हो ॥ ९-११ ॥ सब आपदायें दूर हो जाँय, सब रोग नष्ट हो जायँ, तेरा विघ्न न हो, तू सुखी एवं दीर्घायु हो ॥ १२ ॥ तेरा सब मंगल हो, सब देवता तेरी रक्षा करें, सब बुद्ध, धर्म, संघ के प्रताप से सदा तेरा कल्याण हो ॥ १३-१५ ॥ नक्षत्र, यक्ष ओर भूतों तथा बुरे ग्रहों के दोष इस परित्राण-पाठ के प्रताप से सब उपद्रव नष्ट हो जायँ ॥ १६ ॥ जो बुरे निमित्त हैं, अपशकुन हैं, पक्षी का अप्रिय शब्द है, बुराग्रह-दोष है, अप्रिय बुरा स्वप्न है, वह सब बुद्ध, धर्म, संघ के प्रताप से नष्ट हो जाय ॥१७-१९॥

५. पुण्यानुमोदन

दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा भयप्पत्ता च निब्भया।
सोकप्पत्ता च निस्सोका होन्तु सब्बेऽपि पाणिनो ॥१॥

एत्तावता च अम्हेहि सम्भतं पुञ्ञसम्पदं।
सब्बे देवानुमोदन्तु सब्बसम्पत्ति सिद्धिया ॥ २ ॥

दानं ददन्तु सद्धाय सीलं रक्खन्तु सब्बदा।
भावनाभिरता होन्तु गच्छन्तु देवतागता ॥ ३ ॥

सब्बे बुद्धा बलपत्ता पच्चेकानञ्च यं बलं।

अरहन्तानञ्च तेजेन रक्खं बन्धामि सब्बसो ॥ ४ ॥

आकासट्ठा च भुम्मट्ठा देवानागा महिद्धिका ।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा चिरं रक्खन्तु सासनं ॥ ५ ॥

आकासट्ठा च भुम्मट्ठा देवानागा महिद्धिका ।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा चिरं रक्खन्तु देसनं ॥ ६ ॥

आकासट्ठा च भुमट्ठा देवानागा महिद्धिका ।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा चिरं रक्खन्तु त्वं[1] परन्ति ॥७॥

अर्थ—सभी दुःख प्राप्त प्राणी दुःख-रहित, भय-प्राप्त भय-रहित और शोक-प्राप्त शोक-रहित हों ॥ १ ॥ यह जो हम लोगों द्वारा सब सम्पत्तियों को प्राप्त करने वाला पुण्यार्जन किया गया है, सब देवता उसका अनुमोदन करें ॥ २ ॥ श्रद्धा से दान दें, सदा शील का पालन करें, भावना में लगें और स्वर्ग-गति को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ मैं सभी बलप्राप्त बुद्धों, प्रत्येकबुद्धों तथा अर्हन्तों के प्रताप से सब प्रकार से आरक्षा बाँध रहा हूँ ॥ ४ ॥ आकाश और भूमि पर रहने वाले महाप्रतापी देवता और नाग इस पुण्य का अनुमोदन करके चिरकाल तक शासन (= बुद्धधर्म) ……देशना (= धर्मोपदेश) और तेरी रक्षा करें ॥ ५-७ ॥

६. जयमङ्गल अट्ठगाथा[2]

बाहुं सहस्समभिनिम्मित सावुधन्तं,
गिरिमेखलं उदित-घोर-ससेन-मारं ।

---

१. जब अपने लिए पुण्यानुमोदन करना होता है, तब 'त्वं' के बदले 'मं' पाठ किया जाता है ।

२. इसका पाठ मंगलकार्यों के अवसर पर बौद्ध बालक-बालिकाएँ करती हैं ।

दानादि धम्मविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥१॥

मारातिरेक-मभियुज्झित सब्बरत्तिं,
घोरम्पनालवक मक्खमथद्ध-यक्खं ।
खन्ती सुदन्तविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥२॥

नालागिरिं गजवरं अतिमत्तभूतं,
दावग्गि चक्कमसनीव सुदारुणन्तं ।
मेत्तम्बुसेक विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥३॥

उक्खित्त खग्गमतिहत्थ सुदारुणन्तं,
धावन्ति योजनपथङ्गलि-मालवन्तं ।
इद्धीभिसंखत मनो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥४॥

कत्वान कट्ठमुदरं इव गब्भिनीया,
चिञ्चाय दुट्ठवचनं जनकाय मज्झे ।
सन्तेन सोम विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥५॥

सच्चं विहाय-मतिसच्चक वादकेतुं,
वादाभिरोपितमनं अतिअन्धभूतं ।
पञ्ञापदीपजलितो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥६॥

नन्दोपनन्द-भुजगं विबुधं महिद्धिं,
पुत्तेन थेर भुजगेन दमापयन्तो ।,
इद्धूपदेस विधिना जितवा मुनिन्दो,

तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥७॥

दुग्गाहदिट्ठि भुजगेन सुदट्ठ हत्थं,
ब्रह्मं विसुद्ध जुतिमिद्धि बकाभिधानं।
आणागदेन विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि ॥८॥

एतापि बुद्ध जयमङ्गल अट्ठगाथा,
यो वाचको दिनदिने सरते मतन्दी।
हित्वाननेक विविधानि चुपद्दवानि,
मोक्खं सुखं अधिगमेय्य नरो सपञ्ञो ॥९॥

अर्थ—जिन मुनीन्द्र (= बुद्ध) ने सुदृढ़ हथियारों को धारण किये हुए सहस्र भुजा वाले, गिरिमेखला नामक हाथी पर चढ़े हुए अत्यन्त भयानक सेना सहित मार को अपने दान आदि धर्म के बल से जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥१॥ जिन मुनीन्द्र ने मार के अतिरिक्त सारी रात संग्राम करनेवाले घोर दुर्द्धर्ष और कठिन हृदय वाले आलवक नामक यक्ष को क्षान्ति (= सहनशीलता) और संयम के बल से जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥२॥ जिन मुनीन्द्र ने दावाग्नि-चक्र और विद्युत के समान अत्यन्त दारुण तथा अत्यन्त मदमत्त नालागिरि हाथी को मैत्री रूपी जल की वर्षा करके जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥३॥ जिन मुनीन्द्र ने अत्यन्त भयानक हाथ में तलवार उठाकर योजन तक दौड़ने वाले अंगुलिमाल को अपनी ऋद्धि के बल से जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥४॥ जिन मुनीन्द्र ने पेट पर काष्ठ बाँध कर जनता के मध्य गर्भिणी की तरह हो चिञ्चा के अपशब्दों को अपने शान्त और सौम्य

बल से जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥५॥ जिन मुनीन्द्र ने सत्य को छोड़े हुए असत्यवाद के पोषक, अभिमानी, वाद-विवाद-परायण और अहंकार से अत्यन्त अन्धे हुए सच्चक नामक परिव्राजक को प्रज्ञा-प्रदीप जलाकर जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥ ६ ॥ जिन मुनीन्द्र ने विविध महाऋद्धि सम्पन्न नन्दोपनन्द नाम भुजंग को अपने पुत्र (=शिष्य) महामौद्गल्यायन स्थविर द्वारा अपनी ऋद्धिशक्ति और उपदेश के बल से जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥ ७ ॥ जिन मुनीन्द्र ने भयानक मिथ्यादृष्टि रूपी साँप के द्वारा डँसे गये विशुद्ध ज्योति और ऋद्धि-शक्ति सम्पन्न बक नामक ब्रह्मा को ज्ञान रूपी औषध देकर जीत लिया, उन भगवान् बुद्ध के प्रताप से तेरा कल्याण हो ॥८॥ जो कोई पाठक इन बुद्ध की आठ जयमङ्गल गाथाओं को निरालस भाव से प्रतिदिन पाठ करता है, वह बुद्धिमान् व्यक्ति नाना प्रकार के उपद्रवों से मुक्त होकर मोक्ष (=निर्वाण)-सुख को प्राप्त कर लेता है ।

संस्कार परिच्छेद

व्यक्ति के जीवन में संस्कारों का बहुत महत्व है। संस्कारों से ही व्यक्ति सुसंस्कृत एवं सभ्य होता है। प्राचीन काल से लेकर मानव-समाज में संस्कारों में विश्वास चला आ रहा है। यही कारण है कि प्रत्येक देश एवं जाति में देश-काल के अनुसार संस्कार प्रचलित हैं। बौद्ध-समाज में भी संस्कारों का विधान है। आजकल सभी बौद्ध देशों में कुछ संस्कार प्रचलित हैं। भारत के बौद्धों में भी परम्परा से ये संस्कार चले आ रहे हैं। हम यहाँ क्रमशः इनका परिचय एवं पद्धति दे रहे हैं :—

१. गब्भमङ्गल

यह प्रथम संस्कार है, जो गर्भ स्थिर होने के तीन मास के पश्चात् अपनी सुविधा के अनुसार किया जाता है। गर्भ-मङ्गल संस्कार के दिन गर्भ-स्थित बालक या बालिका के कल्याण के लिए माता त्रिशरण सहित पञ्चशील ग्रहण करती है, बुद्ध-पूजा करती है, परित्राण-पाठ सुनती है, भिक्षुओं को भोजन-दान देती है और उपदेश सुनती है।

२. नामकरण

यह द्वितीय संस्कार है, जो बालक या बालिका के जन्म होने के पश्चात् पाँचवें सप्ताह में किया जाता है। उस दिन माता स्नान करके त्रिशरण-पंचशील ग्रहण करती है और बच्चे को अपनी गोद में लेकर

शान्तिपूर्वक बैठ कर परित्राण पाठ सुनती है। तदुपरान्त बच्चे का नाम रखा जाता है।

३. अन्नपासन

यह तृतीय संस्कार है, जो जन्म के पाचवें मास में सुविधा के अनुसार किया जाता है। अन्नप्राशन संस्कार के दिन माता बच्चे के साथ नवीन वस्त्र पहन कर त्रिशरण-पंचशील ग्रहण करके परित्राण-पाठ सुनती है। तदुपरान्त एक कटोरी में खीर लेकर चम्मच से भिक्षु या बौद्धाचार्य "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स" कहते हुए बच्चे को चटाता है। उसी दिन बच्चे को बुद्ध-मूर्त्ति का दर्शन कराते एवं बुद्ध-पूजा करते हैं।

४. केसकप्पन

यह चतुर्थ संस्कार है, जो बच्चे के जन्म के तीन वर्ष के भीतर अपनी सुविधा के अनुसार किया जाता है। यह संस्कार किसी बौद्ध विहार, पूजनीय स्थान अथवा घर में भी होता है। पहले भिक्षु या बौद्धाचार्य छुरे से बच्चे के दो-चार बाल काटते हैं, तदुपरान्त बाल बनाने वाला व्यक्ति सावधानी से बच्चे के सिर का मुंडन करता है। बालों को आटे की लोई में रखकर उसी लोई से बच्चे का सिर पोंछ लिया जाता है। फिर उस लोई को किसी मैदान में गाड़ दिया जाता है अथवा किसी नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। मुण्डन हो जाने पर बच्चे को स्नान करा नवीन वस्त्र पहनाते हैं और माता या पिता उसे गोद में लेकर त्रिशरण-पञ्चशील ग्रहण करते, परित्राण पाठ सुनते और कुछ दान करते हैं। सायंकाल मन्दिर में जाकर पुष्प-धूप-दीप के साथ बुद्ध-पूजा करते हैं।

५. कण्णविज्झन

यह पञ्चम संस्कार बच्चे के कान छेदे जाने का है। यह जन्म के पाँचवें वर्ष में होता है। कभी-कभी केसकप्पन तथा कण्णविज्झन एक ही साथ भी किये जाते हैं। इस संस्कार के दिन भी त्रिशरण-पञ्चशील लिया और परित्राण-पाठ सुना जाता है। तदुपरान्त बच्चे का कान किसी चतुर व्यक्ति से छेदवा कर बाली आदि पहना दिया जाता है।

६. विज्जारम्भ

यह छठाँ संस्कार है, जो जन्म के पाचवें या सातवें वर्ष में होता है। उस दिन बच्चे को मन्दिर में ले जाकर बुद्ध-पूजन कराते हैं, फिर त्रिशरण-पञ्चशील ग्रहण कराते हैं। तदुपरान्त भिक्षु और बौद्धाचार्य पट्टी या स्लेट पर बच्चे के हाथ में खरिया की पत्ती पकड़ा कर अपने हाथ के सहारे उससे 'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि' लिखवाते हैं। इसे विजारम्भ संस्कार कहते हैं। तदुपरान्त बालक सुविधानुसार किसी विद्यालय में जाकर विद्याध्ययन कर सकता है।

७. विवाह

यह सातवाँ महत्वपूर्ण संस्कार है। गृहस्थ जीवन की आधार-शिला इसे ही मानते हैं। विवाह संस्कार में कोई भी योग्य गृहस्थ (=बौद्धाचार्य) वर-कन्या को त्रिशरण-पञ्चशील प्रदान करता है, फिर परित्राण पाठ कराता है। इसके पश्चात् पति-पत्नी के पारस्परिक कर्तव्यों को समझाते हुए इस प्रकार कहता है :—

पति के कर्तव्य

प्रिय उपासक ! आप सावधान होकर सुनें। भगवान् बुद्ध ने पति द्वारा पत्नी के लिए ये पाँच कर्तव्य बतलाए हैं :—

(१) सम्माननाय—आपको अपनी पत्नी का सम्मान करना चाहिए।

(२) अनवमाननाय—आपको अपनी पत्नी का अपमान नहीं करना चाहिए।

(३) अनतिचरियाय—आपको मिथ्याचार नहीं करना चाहिए।

(४) इस्सरियवोस्सग्गेन—आप धन-दौलत से अपनी पत्नी को सन्तुष्ट रखेंगे।

(५) अलङ्कारानुप्पदानेन—आप अपनी पत्नी को आभूषण आदि देकर प्रसन्न रखेंगे।

पत्नी के कर्तव्य

सौभाग्यवती उपासिके ! आप सावधान होकर सुनें। भगवान् बुद्ध ने पत्नी द्वारा पति के लिए पाँच कर्तव्य बतलाए हैं:—

(१) सुसंविहित कम्मन्ता—आपको अपने घर के सब कामों को भली प्रकार करना चाहिए।

(२) संगहित परिजना—आपको अपने परिवार, परिजन और नौकर-चाकरों को प्रसन्न तथा वश में रखना चाहिए।

(३) अनतिचारिणी—आपको मिथ्याचार से विरत रहकर अपने पति का विश्वासपात्र बनना चाहिए।

(४) सम्भतं अनुरक्खनं—आप को अपने पति के उपार्जित धन-दौलत की रक्षा करनी चाहिए।

(५) दक्खा च अनलसा च सब्बकिच्चेसु—आप को घर के सभी कार्यों में दक्ष तथा आलस रहित होना चाहिए।

इसके पश्चात् प्रदेश के रिवाज के अनुसार पति पत्नी को अँगूठी पहना देता है या सिर में सिन्दूर लगा देता है। तदुपरान्त बौद्धाचार्य महामङ्गल-गाथा[1] द्वारा दोनों को आशीर्वाद देकर दोनों के हाथ में परित्र-सूत्र बाँध देता है और इस गाथा का पाठ कर विवाह-संस्कार समाप्त करता है—

इच्छितं पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु चित्तसंकप्पा चन्दो पन्नरसो यथा।

अर्थ—तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों। तुम्हारे चित्त के सब संकल्प पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह पूर्ण हों।

८. प्रव्रज्या

बौद्धधर्म में प्रचलित रीति के अनुसार जीवन में एक बार सबको प्रव्रजित होना चाहिए। प्रव्रजित हुए व्यक्ति को श्रामणेर (= सामणेर) कहते हैं। श्रामणेर को दस शीलों का पालन करना होता है। श्रामणेर-दीक्षा तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन, पन्द्रह दिन से लेकर एक-दो वर्ष तक की भी होती है। इस दीक्षा को ग्रहण कर विहार में भिक्षुओं के साथ रह कर ध्यान-भावना एवं मनन-अध्ययन में समय बिताया जाता है। यह दीक्षा किसी भिक्षु से ही ग्रहण की जा सकती है। इस दीक्षा को कोई गृहस्थ नहीं दे सकता। इसे जीवन में जब कभी भी सुविधानुसार ग्रहण किया जा सकता है। इसकी विधि भिक्षुओं को ज्ञात होती है। विनय पिटक में इसका पूरा वर्णन है। अतः हम उसे यहाँ नहीं दे रहे हैं।

---

१. देखो पृष्ठ २० में।

९. उपसम्पदा

यह दीक्षा उन श्रामणेरों अथवा व्यक्तियों को दी जाती है जो जीवन पर्यन्त भिक्षु रहना चाहते हैं। उपसम्पन्न भिक्षु के लिए २२७ नियम हैं जिनका पालन उन्हें करना होता है। यह दीक्षा मध्यदेश (=उत्तर प्रदेश और बिहार) में १० भिक्षुओं द्वारा सम्पन्न होती है तथा अन्य प्रदेशों में ५ भिक्षुओं द्वारा। इस दीक्षा के लिए २० वर्ष की आयु का होना अनिवार्य है। इस दीक्षा की विधि भी विनय पिटक में विस्तार-पूर्वक दी हुई है।

१०. दाहकम्म तथा मतकभत्त

यह अन्तिम संस्कार है। जब कोई मरने के सन्निकट होता है तो उसे परित्राण-पाठ सुनाते हैं और यदि वह परित्राण-पाठ सुनते-सुनते मर जाय तो बड़ा शुभ मानते हैं।

मृतक को श्मशान में ले जाने से पूर्व नहलाते, सुगन्धित द्रव्य लगाते और कफन देते हैं। तदुपरान्त भिक्षु को बुलाते हैं। (भिक्षु के न होने पर योग्य बौद्धगृहस्थ भी इस कार्य को कर सकते हैं)। वहाँ उप-स्थित सभी व्यक्ति त्रिशरण-पञ्चशील ग्रहण करते हैं और उसके बाद भिक्षु को एक श्वेत वस्त्र दान करते हैं, जिसे 'मतकवत्थ' (=मृतक-वस्त्र) कहते हैं[1]।

मृतक के घर का कोई व्यक्ति एक गिलास में जल लेकर एक थाली में धीरे-धीरे गिराता है। सभी सम्बन्धी या परिवार के लोग गिलास से अपना हाथ लगाये रहते हैं और इस प्रकार तीन बार कहते हैं:—

इदं नो ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो।

---

१. भिक्षु के अभाव में 'मतकवत्थ' बौद्धाचार्य ले सकता है, किन्तु उसे पीछे भिक्षुसंघ को समर्पित कर देना चाहिए।

अर्थ—यह पुण्य-कर्म हमारे ज्ञाति के लिए हो, हमारे ज्ञाति लोग सुखी हों।

तदुपरान्त भिक्षु इन गाथाओं का पाठ करता है—

उन्नमे उदकं वट्टं यथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ १ ॥
यथा वारिवहा पूरा परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ २ ॥
इच्छितं पत्थितं तुम्हं खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु चित्तसंकप्पा चन्दो पन्नरसो यथा ॥३॥
आयुरारोग्य सम्पत्ति, सग्गसम्पत्तिमेव च।
ततो निब्बानसम्पत्ति, इमिना ते समिज्झतु ॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार ऊँचे स्थल पर गिरा पानी नीचे बह जाता है, उसी प्रकार यहाँ दिया गया सब पुण्य मरे हुए लोगों को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ जिस प्रकार भरी हुई नदियाँ समुद्र को भर देती हैं, उसी प्रकार यहाँ दिया गया पुण्य मरे हुए लोगों को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों। तुम्हारे चित्त के सब संकल्प पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह पूर्ण हों ॥ ३ ॥ इस पुण्यकर्म से तुम्हें आयु, आरोग्यता, स्वर्ग और निर्वाण का सुख प्राप्त हो ॥ ४ ॥

इसके पश्चात् भिक्षु इस गाथा का पाठ करके धार्मिक उपदेश देते हुए संसार की अनित्यता पर प्रकाश डालता है:—

अनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवय-धम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो ॥

अर्थ—सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और नष्ट होना उनका

ग्भाव है। उत्पन्न होकर वे शान्त हो जाते हैं। उनका सर्वथा शान्त ा जाना परम सुख है।

इसके पश्चात् मृतक की अर्थी श्मशान में ले जानी चाहिए। वहाँ ता बनाकर उस पर शव को रखना चाहिए। वहाँ पर भी त्रिशरण-चशील ग्रहण करके बुद्ध, धर्म और संघ के गुणों का स्मरण करते हुए ोन बार चिता की प्रदक्षिणा करके कुछ सुगन्धित वस्तुओं के साथ चिता ं आग लगानी चाहिए। चिता के जल जाने पर बड़े लोगों की अस्थियों =फूल) को एकत्र कर लेना चाहिए और उनपर उनके सम्मान के लए एक छोटा स्तूप बनवाना चाहिए। जिनमें शव-दाह करने की सामर्थ्य ाहीं है वे शव को भूमि में गाड़ भी सकते हैं।

मृत्यु के सातवें, दसवें या बारहवें दिन मृत व्यक्ति के पुण्य के लिए भेक्षुओं को मतक-भत्त (=श्राद्ध) देते हैं। भिक्षुओं के अभाव में भेखारियों, परिवार के लोगों तथा विद्वान् गृहस्थों को भोज कराते हैं।

भिक्षुओं को भोजन दान देने से पूर्व त्रिशरण-पंचशील ग्रहण करके हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहते हैं—

कालकतानं अम्हाकं ञातीनं पुञ्ञत्थाय इमं भिक्खं भिक्खु संघस्स देम।

अर्थ—मरे हुए अपने ज्ञातियों के पुण्य के लिए इस भिक्षा को भिक्षुसंघ को देते हैं।

तदुपरान्त "इदं नो ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो" तीन बार कह कर एक थाली में गिलास से जल गिराते हैं और भिक्षु 'उन्नमे उदकं वट्टं' आदि गाथा (पृष्ठ ३४ में देखें) को पढ़ते जाते हैं।

भोजनोपरान्त भिक्षु परित्राण-पाठ करते तथा उपदेश देते हैं। जाते समय गृहस्थ हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते हैं। प्रणाम करते समय भिक्षु इस गाथा को बोलते हैं :—

अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।

अर्थ—जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।

त्यौहार परिच्छेद

बौद्धधर्म में प्रतिमास में चार दिन उपोसथ-व्रत रहने के लिए नियत हैं:—दोनों पक्षों की अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या। उस दिन अष्टशील का पालन किया जाता है। इनके अतिरिक्त वर्ष में चार महापर्व हैं—(१) वैशाखी पूर्णिमा (२) आषाढ़ी पूर्णिमा (३) आश्विन पूर्णिमा (४) माघी पूर्णिमा। बर्मा में ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन भी त्यौहार मनाया जाता है। त्यौहार के दिन त्रिरत्न पूजा, वन्दना, दान, शील और भावना आदि पुण्य कर्मों को करते हैं। उस दिन अष्टशील का पालन महाफलदायी समझा जाता है।

१. वैशाखी पूर्णिमा

इसी दिन तथागत का लुम्बिनी में जन्म हुआ था। इसी दिन उन्होंने उरुवेला में बोधि वृक्ष के नीचे बैठे हुए बुद्धत्व प्राप्त किया था और इसी दिन कुशीनगर में जोड़े शाल वृक्षों के मध्य उनका महापरि-निर्वाण हुआ था। अतः यह दिन तीन प्रकार से पवित्र है और बौद्धों के लिए महापर्व है। इस दिन सारे संसार के बौद्ध ससमारोह बुद्धजयन्ती मनाते हैं।

२. ज्येष्ठ पूर्णिमा

इस दिन भगवान् ने कपिलवस्तु में महासमय सुत्त का उपदेश दिया था। बौद्ध देशों में इस पर्व को भी समारोह के साथ मनाते हैं।

३. आषाढ़ी पूर्णिमा

इसी दिन बोधिसत्व ने महामाया देवी के कोख में प्रवेश किया था।

इसी दिन महाभिनिष्क्रमण किया था और इसी दिन ऋषिपतन मृगदाय (=सारनाथ) में धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था।

आज ही के दिन भिक्षु वर्षावास का अधिष्ठान करते हैं और तीन मास तक एक ही स्थान पर रहने का व्रत ग्रहण करते हैं।

४. आश्विन पूर्णिमा

इसी दिन भगवान् बुद्ध तावतिंस देवलोक में अपनी माता महा-माया और देवताओं को उपदेश देकर तीन मास के पश्चात् शंकास्य नगर में पृथ्वी पर उतरे थे तथा आज ही के दिन भिक्षु वर्षावास समाप्त कर प्रवारणा करते हैं। बौद्ध देशों में इस दिन बड़ी धूमधाम के साथ प्रवारणोत्सव मनाया जाता है।

५. माघी पूर्णिमा

इसी दिन भगवान् ने वैशाली के सारन्दर चैत्य में आयु-संस्कार का त्याग किया था और घोषणा की थी—'आज से तीन मास के पश्चात् तथागत का परिनिर्वाण होगा।'

इनके अतिरिक्त कुछ विशेष पर्व हैं, जो ऋतु आदि से सम्बन्धित हैं। इन दिनों बौद्ध गृहस्थ विशेषरूप से पुण्यानुष्ठान करते हैं और आनन्द मनाते हैं।

६. नाग पंचमी

यह त्यौहार श्रावण शुक्ल ५ को मनाया जाता है। यह भारतवर्ष की प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध सुसभ्य नाग जाति का त्यौहार है। नाग जाति के लोग भगवान् बुद्ध के बड़े भक्त थे। इस दिन खीर से भगवान् बुद्ध की पूजा करते हैं, शील ग्रहण करते हैं और धर्म-श्रवण करते हैं। भिक्षुओं को भोजन-दान देते तथा आनन्द मनाते हैं।

७. विजया दशमी

यह पर्व आश्विन शुक्ल १० को मनाते हैं। इसी दिन सम्राट् अशोक ने कलिंग-विजय करके यह प्रतिज्ञा की थी कि अब मैं शस्त्र के द्वारा हिंसात्मक विजय न करके धर्म-प्रचार के द्वारा अहिंसात्मक विजय करूँगा। हिंसापूर्ण युद्धों से पीड़ित जनता महान् बौद्ध सम्राट् की इस घोषणा को सुनकर बहुत हर्षित हुई और इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दिन को सदा स्मरण रखने के लिए इस दिन को पर्व बना लिया। इस दिन बुद्ध-पूजा, शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण और दान आदि पुण्य-कार्य कर उत्सव मनाते हैं।

८. दीपावली

यह त्यौहार कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है। यह ऋतु-पर्व है। वर्षा समाप्त होने पर घरों की सफाई की जाती है। बुद्ध-पूजा, शील-ग्रहण और भोजन-दान किया जाता है। रात्रि में मन्दिर, घर, बोधिवृक्ष और चैत्य के पास दीपक जला कर दीपावली का उत्सव मनाते हैं।

९. वसन्त

यह त्यौहार माघ शुक्ल ५ को होता है। यह भी ऋतु पर्व है। इस दिन सरसों के पीले फूल और खीर से बुद्ध-पूजा की जाती है। भिक्षुओं को केसरिया रंग की खीर एवं भोजन-दान देते हैं। बुद्ध-पूजा, शील-ग्रहण और धर्म-श्रवण कर आनन्द मनाते हैं।

१०. होली

यह त्यौहार फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जाता है। यह भी ऋतु पर्व है। इस समय शीतकाल की समाप्ति होती है, अतः जाड़े के कपड़े बदल कर नये वसन्त और ग्रीष्म के कपड़े पहने जाते हैं और नये अन्न

का भोजन किया जाता है। इस दिन बुद्ध-पूजा, शील-ग्रहण और भोजन-दान करने के उपरान्त बुद्ध-गीत गाते हैं तथा इत्र और सुगन्धित जल एक दूसरे पर डालते हैं। परस्पर प्रेमपूर्वक मिलते तथा पान, गरी और छुहारा एक दूसरे को देते हैं। कहीं-कहीं यह उत्सव जल-क्रीड़ा एवं बुद्ध-कीर्तन के रूप में भी मनाया जाता है।

तीर्थस्थान

बौद्धधर्म में चार महातीर्थ हैं (१) लुम्बिनी—यहाँ तथागत का जन्म हुआ था। (२) बुद्धगया—यहाँ भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। (३) सारनाथ—यहाँ भगवान् ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। (४) कुशीनगर—यहाँ पर तथागत का महापरिनिर्वाण हुआ था।

इनके अतिरिक्त बौद्धधर्म में अन्य भी स्मारक तीर्थस्थान हैं। यहाँ उनके नाम दिये जा रहे हैं:—

बिहार—राजगृह, वैशाली, नालन्दा।

उत्तर प्रदेश—कौशाम्बी, पावा, शंकास्य, श्रावस्ती।

नेपाल की तराई—कपिलवस्तु।

विन्ध्यप्रदेश—भरहुत।

मध्यभारत—उज्जैन, बाघ, धमनार माहिष्मती।

भोपाल—साँची, भेलसा, ललितपुर।

बम्बई—कार्ला, भाजा, कन्हेरी।

हैदराबाद—अजन्ता, एलौरा।

आंध्र—नागार्जुनी कोंडा, अमरावती।

मद्रास—कांजीवरम्, नागपट्टम्, श्रीमूलवासम्।

सौराष्ट्र—जूनागढ़, धंक, सिद्धसर, तलजा, सनाह, बलभी।

गुजरात—काम्पिल्य।

पश्चिमी पाकिस्तान—तक्षशिला, पेशावर।

बौद्धधर्म की पुस्तकें

विशुद्धि-मार्ग (पहला भाग)—भिक्षु धर्मरक्षित १०)
दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन ६)
मज्झिम निकाय—राहुल सांकृत्यायन ८)
विनयपिटक— ,, ८)
संयुक्त निकाय—भिक्षु धर्मरक्षित और भिक्षु ज० काश्यप (दो भाग) १२)
बुद्धचर्य्या—राहुल सांकृत्यायन ८)
थेरगाथा—भिक्षु धर्मरत्न ३)
सुत्तनिपात— ,, ३)
धम्मपद—भिक्षु धर्मरक्षित ॥)
धम्मपद—(कथाओं के साथ) भिक्षु धर्मरक्षित २॥)
जातिभेद और बुद्ध— ,, ॥)
सारनाथ-वाराणसी— ,, १॥)
इतिवुत्तक— ,, ॥)
बौद्धयोगी के पत्र— ,, १)
श्रद्धा के फूल—कुमारी विद्या ।=)
बुद्ध-अर्चना—(कविता) कुमारी विद्या ॥=)
कामना— ,, ,, ,, ।=)
आदर्श बौद्ध महिलाएँ—,, ,, १॥)
नारी-हृदय— ,, ,, ,, १॥)